इकाई 7 व्यक्तिगत और सामूहिक*

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 समाज और वैयक्तिक चेतना

7.3 सामूहिक चेतना

7.4 सामूहिक प्रतिनिधान की संकल्पना

7.4.1 सामूहिक प्रतिनिधान-परिभाषा

7.4.2 वैयक्तिक प्रतिनिधान

7.4.3 सामूहिक प्रतिनिधान के बनने की प्रक्रिया

7.5 अन्तः बोध और सामूहिक प्रतिनिधान

7.6 धर्म और सामूहिक प्रतिनिधान

7.7 सारांश

7.8 संदर्भ

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपके लिए संभव होगा

- समाज और व्यक्ति चेतना के मध्य संबंध को स्पष्ट करना
- दर्खाइम के सामूहिक बोध की अवधारणा पर चर्चा करना
- सामूहिक प्रतिनिधान के अर्थों की व्याख्या करनां
- "अवधारणाओं" या "विचार की श्रेणियों" की सामूहिक प्रकृति को जानना और
- धर्म द्वारा सामूहिक प्रतिनिधान की विवेचना करना

7.1 प्रस्तावना

दर्शन से दर्खाइम के अलग होने के बारे में, आपको इकाई 5 में पहले ही मालूम हो चुका है। आपने यह भी पढ़ा है कि उसने समाजशास्त्र को विज्ञान की प्रस्थिति तक लाने का प्रयास किया। आइए अब हम दुर्खाइम के विचारों के केन्द्रीय मूल-विषय अर्थात् सामूहिकता और व्यक्तियों के मध्य संबंध पर चर्चा करे। दुर्खाइम का प्रयास था कि वह इस संबंध में वैज्ञानिक धारणा के विभिन्न स्वरूपों को विकसित करें। उसे अपने से पूर्व के सभी सामाजिक सिद्धांत (जिनमें "व्यक्ति उसका प्रारंभिक बिन्दू माना गया था) असंतोषजनक लगते थे। उसने व्यक्ति के "संकल्प", "इच्छा या इच्छा शक्ति" के आधार पर बने समाज के सिद्धांतों को नकार कर एक सामाजिक समूह समुदाय या

* इग्नू पाठ्यसामग्री से अंगीकृत : *समाजशास्त्रीय सिद्धान्त* (ESO13) की इकाई 12 का नीता माथुर द्वारा संशोधन

समाज की सामूहिक प्रकृति से उत्पन्न हर सामाजिक प्रक्रिया के वैज्ञानिक अध्ययन को अपनाया। सामूहिक प्रतिनिधान (Collective representation) की दर्खाइम की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए इस इकाई में पांच मुख्य पहलुओं पर चर्चा की गई है। प्रथम यह समाज और वैयक्तिक चेतना के विषय में आपको बताती है, फिर यह सामूहिक चेतना की अवधारणा का उल्लेख करती है। फिर प्रतिनिधान, की सविस्तार विवेचना करती है। अन्त में हमने सामूहिक प्रतिनिधान के बारे में आत्मबोध और धर्म के संदर्भ में विवेचना की है।

7.2 समाज और वैयक्तिक चेतना

समाज की एक प्रकृति होती है, जो अपने आप में विशिष्ट है। यह व्यक्ति की प्रकृति से भिन्न होती है। समाज उन लक्ष्यों की खोज में रहता है जो समाज विशेष से जुड़े होते हैं। सामूहिक अस्तित्व का दबाव ऐसा है कि व्यक्तियों को अपने विशिष्ट स्वार्थों को छोड़ना पड़ता है। व्यक्तियों को कुछ किस्म की असुविधाओं या आत्म-त्याग आदि को मानना होता है जिसके बिना सामाजिक जीवन असंभव है। इस प्रकार सामज अपनी सामूहिकता की प्रकृति को व्यक्तियों पर लागू करता है। उदाहरण के लिए हम अपने जीवन में हर समय आचरण या व्यवहार के नियमों की अधीनता स्वीकार करने के लिए स्वयं बाध्य हैं। इनको न तो हमने बनाया, ना ही उनका चुनाव किया। ऐसे आचरण के नियम कभी-कभी व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों और रूचियों के विरोध में होते हैं। तथापि, हमसे उनको मानने और अनुसरण करने की अपेक्षा की जाती है। इस प्रक्रिया में समाज की यथार्थता व्यक्ति के लिए चिन्तन, व्यवहार और चेतना को विशिष्ट रूप देती है।

समाज व्यक्तियों के ऊपर नैतिक सत्ता का प्रयोग करता है। यह नैतिक सत्ता समाज को आदर व सम्मान देती है। विचार, विश्वास, भावनाएँ आदि जिन्हें समाज व्यक्तियों पर लागू करता है, समाज के उपादान हैं। ऐसे विचार, विश्वास और नैतिक संहिताएं आदि सामूहिकता द्वारा अनुमोदित है। अतः एक व्यक्तिगत उल्लंघन भी सामाजिक क्रिया या दण्ड को आमंत्रित करने के लिए उत्तरदायी है। ये सभी व्यवहार जो समाज के लिए लाभदायक हैं, समाज के द्वारा प्रतिपादित है और इन्हें पवित्र माना जाता है। धार्मिक मत, टोटम के चिन्ह या आधुनिक युग में झण्डा आदि सभी पवित्र वस्तुएं है। ये व्यक्ति में एकाएक भय और श्रद्धा की अनुभूति को प्रेरित करते हैं। पवित्र वस्तुओं के विपरीत साधारण लौकिक वस्तुएं भी हैं। इन वस्तुओं को वैसी श्रद्धा प्राप्त नही है जैसी पवित्र वस्तुओं को दी गयी है। इसके अतिरिक्त, समाज लौकिक वस्तुओं को पवित्र वस्तुओं से अलग रखता है। दुर्खाइम ने माना है कि जिन्हें सम्मान से वंचित किया गया है और साथ ही लोगों को इनसे दूरी बनाए रखने के लिये कहा गया हैं। अन्ततः समाज में आचरण के नियम होते है जो पवित्र वस्तुओं के संबंध में लोगों के व्यवहार को निर्धारित करते हैं।

समाज व्यक्तियों से आत्म-त्याग या प्रयासों को मांगने तक ही अपने को सीमित नहीं रखता। समाज की सामूहिक ताकत व्यक्तियों पर पूर्णतः बाहर से कार्य नहीं करती। दर्खाइम आगे यह तर्क देते हैं कि समाज वैयक्तिक चेतना में और वैयक्तिक चेतना द्वारा अपना अस्तित्व रखता है। इसलिए, सामाजिक ताकृत को व्यक्तियों के अंदर प्रवेश करना होता है और अपने को उनमें संगठित करना होता है। इस तरीके से यह वैयक्तिक चेतना सामूहिक चेतना का एक अभिन्न हिस्सा बन जाती है। यही कारण है

कि सामाजिक विश्वास, नैतिकता और नियम आदि व्यक्तियों द्वारा उन्नत किए गए और बढ़ाये गये हैं। उनकी उत्पत्ति के स्रोत को अकेले व्यक्तियों में ढूंढा या आरोपित नहीं किया जा सकता। बल्कि उनकी सतत मान्यता सामूहिक अस्तित्व में हैं। फिर भी ऐसे विश्वास, विचार, भावनाएं आदि वैयक्तिक चेतना का एक स्थिर भाग होते हैं।

इस प्रकार एक तरफ पवित्र वस्तुओं का संसार है। यह संसार एक सामूहिकता द्वारा प्रतिपादित है। यह वैयक्तिक-आत्म-बोध को धर्म समाज में मिला देता है। यह प्रेम एवं सम्मान को लागू करता है और समाज को व्यक्ति के मानस में स्थान देता है। यह व्यक्तियों को उन चीजों से जोड़ता है जो उनकी पहुंच से परे है। दूसरी तरफ साधारण लौकिक वस्तुओं का संसार है। यह व्यक्तिगत सावयवों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। यह उन सभी वस्तुओं को भी अभिव्यक्त करता है जिससे व्यक्ति प्रत्यक्षः संबंधित है। यह मनुष्यों के साधारण जीवन से सम्बद्ध होता है। इसमें दिन-प्रतिदिन की जीवनचर्चा शामिल होती है। इस प्रकार वैयक्तिक चेतना को समाज से दो तरह के स्वरूप, पवित्र और लौकिक मिलते है।

समाज और वैयक्तिक चेतना पर तथा पवित्र एवं लौकिक की अवधारणा पर दुर्खाइम के विचारों की चर्चा के बाद, आइए सोचिये और करिये 1 को पूरा करें।

सोचिए और करिए 1

निम्न के बीच क्या अंतर है :

अ) गंगा जल और पानी (H_2O) तथा

ब) प्रसाद और जलपान के बीच इनमें से क्या पवित्र है और क्या नहीं? उपरोक्त प्रश्न के उत्तर और व्याख्या एक संक्षिप्त टिप्पणी में कीजिए।

यदि संभव हो, तो अपनी टिप्पणी अपने अध्ययन केन्द्र की अन्य विद्यार्थियों की टिप्पणी से मिलाइये।

7.3 सामूहिक चेतना

दुर्खाइम के चिंतन में सामूहिक चेतना की धारणा सर्वोपरि है। दुर्खाइम ने सामूहिक चेतना का वर्णन एक समाज के अधिकांश सदस्यों की सामान्य भावनाओं और विश्वासों के रूप में किया हैं। इन विश्वासों और भावनाओं की व्यवस्था का अपना स्वयं का एक जीवन है। इसका पूरे समाज में अस्तित्व बना हुआ है। इसका विशिष्ट स्वरूप है, जो इसे एक वास्तविकता प्रदान करता है। सामूहिक चेतना उन विशेष दशाओं से स्वतंत्र है जिनमें व्यक्तियों को रखा गया है। यह एक समाज के सम्पूर्ण क्षेत्र (बड़े और छोटे कस्बों एवं गांवों) में फैली हुई है। यह सभी व्यवसायों या पेशों आदि में सामान्य है। यह विभिन्न पीढ़ियों को एक दूसरे से जोड़ती है। व्यक्ति समाज में आते है और चले जाते हैं जबकि सामूहिक चेतना निरंतर बनी रहती है। यद्यपि सामूहिक चेतना केवल व्यक्तियों द्वारा ही निर्मित होती है, लेकिन इसकी सीमा व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं है बल्कि उससे उच्च स्तर पर क्रियान्वित होती है।

विस्तार एवं ताकत के अर्थ में, सामूहिक चेतना एक समाज से दूसरे में भिन्न होती है। अल्पविकसित समाजों में सामूहिक चेतना वैयक्तिक चेतना को अपने अन्दर ही समाविष्ट कर लेती है। इस प्रकार के समाजों में सामूहिक चेतना का विस्तार स्पष्ट

एवं सर्वव्यापी है। उदाहरणार्थ आदिम समाजों में प्रचलित सामाजिक नियंत्रण और निषेध व्यक्तिगत सदस्यों के ऊपर दृढ़तम रूप से आरोपित होते है, और सभी सदस्य इसका वर्चस्व मानते हैं। यह सामूहिक चेतना ही है जो व्यक्तियों के अस्तित्व को नियंत्रित करती है। परस्पर अनुभव की नई सामूहिक भावनाओं में अत्यधिक ताकत होती है तथा निषेधों का उल्लंघन करने वाले व्यक्तियों पर ये कठोर दण्ड के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। एक समाज की सामूहिक चेतना जितनी दृढ़तर होगी उतना ही व्यापक अपराध के विरोध में या अन्य किसी सामाजिक आदेश के उल्लंघन पर आक्रोश होगा। सामूहिक चेतना एक समाज की सम्बद्धता, एकीकरण या पूर्ण एकता को भी दर्शाती है। आदिम समाजों में सामूहिक चेतना सबसे दृढ़तम और पूर्णरूप से अंगीकृत है। जबकि विकसित समाजों में व्यक्तियों के बीच अधिकाधिक विभेदीकरण हो जाता है। अधिकतर परिस्थितियों में, प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं के या अपने समूह की प्राथमिकताओं के अनुसार विश्वास करने, इच्छा करने और कार्य करने के लिए अधिकाधिक स्वतंत्र होता है। इस प्रकार सामूहिक चेतना के प्रभाव का क्षेत्र घट जाता है। निषेधों आदि के उल्लंघन के विरूद्ध सामूहिक प्रतिक्रियाएँ कमजोर पड़ जाती है। दुर्खाइम ने सामूहिक चेतना की अवधारणा का प्रयोग और विकास मूलतः अपने प्रथम, कार्य, समाज में श्रम विभाजन (द डिविज़न ऑफ लेबर इन सोसाइटी, 1895) में किया। अपने बाद के कार्यों में, दुर्खाइम ने सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा को विकसित किया जिसमें सैद्धांतिक विकास की सम्भावनाएँ हैं।

बोध प्रश्न 1

i) समाज और वैयक्तिक चेतना के मध्य संबंध पर दुर्खाइम के विचारों को अपनी समझ द्वारा स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

ii) दुर्खाइम की सामूहिक चेतना की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

7.4 सामूहिक प्रतिनिधान की संकल्पना

दुर्खाइम ने सभी समाजों में सामूहिक विश्वासों और भावनाओं, और विशेषकर नैतिकता और धर्म की भूमिका को देखा है। ये कैसे मन में बैठाये गये और कैसे ये समाज के ऊपर नियंत्रण करते है? ये कैसे समाज द्वारा प्रभावित हुए, और बदले में कैसे ये सामाजिक जीवन के अन्य रूपों को प्रभावित करते है। एक समाज की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान सामूहिक विश्वास एवं भावनाएं कैसे बदलती है? ऐसे उत्तरों को व्यक्त करने के लिए दुर्खाइम ने सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा का उपयोग किया।

7.4.1 सामूहिक प्रतिनिधान-परिभाषा

दुर्खाइम के सामाजिक सिद्धांत का एक प्रमुख योगदान सामूहिक प्रतिनिधान की अवधारणा है। वास्तव में, दुर्खाइम के बाद के कार्य (1897 और उसके बाद) में "सामूहिक प्रतिनिधान" को एक व्यवस्थित अध्ययन के रूप में देखा जा सकता है। दुर्खाइम ने सामूहिक प्रतिनिधान की प्रथम परिभाषा अपनी पुस्तक "आत्महत्या" (सुइसाइड) में बताई है कि वास्तव में सामाजिक जीवन प्रतीकों का बना हुआ है।

एक वस्तु और उसे देखने के ढंग के बीच अंतर होता है। सामान्यतः एक समाज में ढंग विशेष से उसका वर्णन होता है और इसका अर्थ समझा जाता है। वस्तु को पुनः प्रस्तुत किया जाता है अभिप्रायों के संबंध में एक शब्द को एक अर्थ दिया जाता है। वस्तु या शब्द को इस प्रकार "निरूपित" किया जाता है एक वैज्ञानिक के लिए पानी का प्रतीक H_2O फार्मूला है चिकित्सक के लिए 99^0 (फारेनहाइट) से ऊपर का तापमान बुखार का प्रतीक है। इसी प्रकार धर्म के संदर्भ में एक पत्थर का टुकड़ा महादेव का प्रतीक हो सकता है। महाविद्यालय या स्कूल की टीमें (दल) अपने प्रतीक रंगों जैसे हल्का नीला, गहरा नीला, हरा और सफेद, गुलाबी और नीला आदि द्वारा या "एशियाड" और "ओलम्पिकस" प्रतियोगिताओं में अलग-अलग राष्ट्रीय दल (टीमें) अपने रंगों द्वारा निरूपित होती है। सामूहिक प्रतिनिधान सामूहिक चेतना की वह स्थिति है जिनकी प्रकृति वैयक्तिक चेतना की स्थिति से भिन्न है। ये ऐसे ढंग को अभिव्यक्त करते है जिसमें एक समूह के लोग अपने को वस्तुओं के रूप में प्रकट करते है तथा सामाजिक समूह को प्रभावित करते है। सामाजिक जीवन की ओर उन्मुखता से सामूहिक प्रतिनिधान निर्मित हुए है। ये समाज से जुड़े है तथा कुछ अर्थ में समाज के बारे में है।

7.4.2 वैयक्तिक प्रतिनिधान

दुर्खाइम ने सामूहिक प्रतिनिधान की स्वतंत्र यथार्थता को महत्व दिया है। इसके लिए उसने वैयक्तिक प्रतिनिधान का उदाहरण दिया है। वैयक्तिक प्रतिनिधान का आधार शरीर की मस्तिष्क कोशिकाओं की तरह है। वैयक्तिक प्रतिनिधान इस आधार की संयुक्त किया के परिणामस्वरूप निर्मित होते हैं। लेकिन आधार के संघटक भागों के संदर्भ में ही इनकी व्याख्या नहीं की जा सकती। वास्तव में, वैयक्तिक प्रतिनिधान की अपनी स्वयं की विशेषताएँ है और आधार से स्वतंत्र इनकी सापेक्ष स्वायत्तता होती है। पुनः विभिन्न वैयक्तिक प्रतिनिधान जो (भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से है) एक दूसरे को प्रत्यक्ष प्रभावित कर सकते हैं और एक दूसरे से जुड़ सकते हैं।

7.4.3 सामूहिक प्रतिनिधान के बनने की प्रक्रिया

दुर्खाइम के अनुसार सामूहिक प्रतिनिधान सम्बद्ध व्यक्तियों से बने आधार से निरूपित होते है। लेकिन इन्हें अलग-अलग व्यक्तियों तक सीमित नही किया जा सकता तथा न ही उनके संदर्भ में इनकी पूर्णतः व्याख्या की जा सकती है। इनका स्वयं का अस्तित्व होता है तथा ये स्वनिर्मित (sui generis) होते हैं। सामूहिक प्रतिनिधान के मूल और आधाभूत स्वरूप में उनकी उत्पत्ति के चिन्ह अंकित होते है। इस तरह सम्बद्ध व्यक्तियों की प्रकृति से सामाजिक चेतना के मूल विषय का घनिष्ठ संबंध होता है। यह आधार सामाजिक तत्वों की प्रकृति व संख्या, उनके सम्मिलित होने की पद्धति और भौगोलिक क्षेत्र विशेष में उनके वितरण आदि से निर्धारित होता है। लेकिन जब प्रतिनिधानों का मूल आधार बन जाता है तो ये आंशिक रूप में स्वायत्त वास्तविकताएँ बन जाते हैं। तब इनका अपना ही अस्तित्व होता है जिसमें एक दूसरे को आकर्षित व विकर्षित करने की नए -नए सामूहिक प्रतिनिधान निर्मित होते हैं। उदाहरणार्थ, दुर्खाइम ने मिथकों, दन्तकथाओं, धार्मिक अवधारणाओं और धार्मिक समुदायों आदि की अत्यधिक वृद्धि पर ध्यान दिया है। वे कालान्तर में, संयुक्त एवं पृथक रूप से जटिल विश्वासों, मूल्यों और नैतिकताओं आदि या अवधारणाओं या विचार की श्रेणियों में रूपान्तरित होते रहते हैं।

7.5 अन्तःबोध और सामूहिक प्रतिनिधानव

वस्तुओं के लक्षणों को ग्रहण करने और जानने की प्रक्रिया को अंतः बोध कहते है। यह एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सामूहिक स्थितियों में लोग इन घटनाओं के बारे में बातचीत करते हैं इस प्रकार एक दूसरे की जागरूकता को बढ़ाते हैं। इस तरह मानसिक आदान-प्रदान के विचार प्रतीक का रूप धारण कर लेते हैं जिन्हें स्वीकृति और मान्यता दी जाने लगती है। अतः सामूहिक प्रतिनिधान या तो एक अवधारणा है या विचार की एक श्रेणी, जिसकी अधिकांश लोग एक ही तरह से समझते हैं। इससे लोगों में प्रभावशाली सम्पर्क संभव होते हैं। संयुक्त रूप से निर्मित व विकसित होने के कारण इन सामूहिक प्रतीकों की अपनी एक शक्ति होती है। ये व्यक्ति विशेष या समूह के विचार से स्वतंत्र होते हैं। इनका व्यक्तियों पर गहरा प्रभाव होता है। यह समाज पर भी समुचित प्रभाव बनाए रखते हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय झंडा एक राजनैतिक प्रतिनिधान है तथा पवित्र ग्रंथ प्रायः धार्मिक प्रतिनिधान होते है जैसे कि बाइबल, रामायण या गुरूग्रंथ साहिब। आइए अब विचार (thought) की अवधारणाओं की प्रकृति की कुछ विस्तार में विवेचना करें और देखे कि दुर्खाइम की दृष्टि में वे किस प्रकार सामूहिक प्रतिनिधान का स्वरूप धारण कर लेते हैं।

इन्द्रियजन्य (sensual) प्रतिनिधान जैसे संवेदनाएं, अनुभव-बोध या कल्पनाओं आदि से विचार (thought) की अवधारणाएं विपरीत हैं। इन्द्रियजन्य प्रतिनिधान वाली विचार की अवधारणाएं एक अतन्त प्रवाह में बहती हैं। ये एक दूसरे के बाद नदी की लहरों की भांति आती हैं। कुछ समय के लिए भी ये स्थिर रूप में नही रहती। यह कभी निश्चत नहीं होता कि जैसा हमने पहली बार इसका अनुभव किया, उसी तरह का अनुभव बोध पुनः प्राप्त हो। दूसरी ओर, अवधारणा का एक विशिष्ट स्थिर अस्तित्व होता है, अवधारणा स्वयं नहीं बदलती और किसी भी परिवर्तन का प्रतिरोध करती है। यह तभी बदलती है जब समाज इसमें कुछ त्रुटि पाता है और इसमें सुधार करता है। उदाहरण

के लिए, जिससे लोग दिन-प्रतिदिन के जीवन में सोचते हैं, अवधारणाओं की ऐसी व्यवस्था की अभिव्यक्ति उनकी मातृभाषा की शब्दावली में देखने को मिलती है। प्रत्येक "शब्द" एक अवधारणा का प्रतिनिधि है। भाषा का स्थायी अस्तित्व होता है। भाषा बहुत धीरे-धीरे ही आता है। सामूहिक प्रतिनिधान और अंतःबोध में सम्बन्ध समझने के बाद सोचिये और करिये 2 को पूरा करें तथा सामूहिक प्रतिनिधान के अर्थ को आत्मसात करें।

सोचिए और करिए 2

पिता, पिता के भाई, पिता के पिता, और माता के भाई के लिए प्रयुक्त शब्दों को अपनी भाषा तथा दो अन्य भाषाओं में लिखिए। देखिए, कैसे ये शब्द सभी भाषाओं में समानार्थक हैं और लोग इनका एक अर्थ लगाते हैं? कुछ ऐसे शब्द लिखिए जो विवाह और जन्म की रीतियों का वर्णन करते है जैसे "कन्यादान" या "नामकरण" आदि। इन्हें हिन्दुओं में "संस्कार" माना जाता है। अपनी मातृभाषा और धर्म से ऐसे शब्दों को चुनिए जो सामूहिक प्रतिनिधान के विचारों को व्यक्त करते हैं। इन शब्दों की सूची बनाकर अपने अध्ययन केन्द्र में समाजशास्त्र के छात्र-छात्राओं के साथ इस सूची के शब्दों पर चर्चा कीजिये।

अवधारणा सर्वव्यापी होती है या कम से कम ऐसा होने की क्षमता रखती है। संभव है कि व्यक्ति किसी अवधारणा को दूसरों के साथ ही अभिव्यक्त करें।एक अवधारणा द्वारा लोगों के बीच संपर्क स्थापित होता हैं। दूसरी ओर अनुभव बोध (sensation) व्यक्ति की जैविक रचना और व्यक्तित्व से संबंधित होता है। यह न तो अलग किया जा सकता है और ना ही दूसरे व्यक्तियों को दिया जा सकता हैं। जबकि व्यक्तियों के बीच विचार-विमर्श और सभी बौद्धिक सम्प्रेषण अवधारणाओं के आदान-प्रदान से संभव हो जाता है। इस प्रकार अवधारणाएं और विचार की श्रेणियां निश्चित रूप से आवश्यक अवैयक्तिक प्रतिनिधान हैं। इन्हीं के द्वारा बोध संरचनाएं और मानव बौद्धिकताएं परस्पर समझी जाती हैं।

समुदाय अवधारणाओं की उत्पत्ति करता है। ये अवधारणाएं व्यक्ति विशेष की मानसिक स्थिति से नहीं बनती हैं। ये समूह या सामूहिकता की सहयोगी प्रकृति से पैदा होती है। व्यक्तिगत अनुभव बोध से विचार की श्रेणियां अधिक स्थिर होती हैं। इससे अभिप्राय है कि सामूहिक प्रतिनिधान वैयक्तिक प्रतिनिधान की अपेक्षा अधिक स्थिर हैं। सामाजिक परिवेश में हो रहे मामूली परिवर्तन भी वैयक्तिक प्रतिनिधान को प्रभावित करते हैं। परन्तु इसकी तुलना में समाज की मानसिक अथवा वास्तविक स्थिति में परिवर्तन अत्यधिक महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे क्रांति या राजनैतिक आंदोलन आदि से ही होता हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए भारत का राष्ट्रीय आंदोलन इसका एक उदाहरण है।

भाषा और इसके द्वारा निर्मित अवधारणाओं की व्यवस्था सामूहिक विवेचन की उत्पत्ति है। भाषा उसी तरह से अभिव्यक्त होती है जिस तरह समाज सामूहिक अनुभवों के तथ्यों को परस्तुत करता है। भाषा के विभिन्न तत्वों के अनुरूप विचार ही सामूहिक प्रतिनिधान होते हैं।

अवधारणाएं सामूहिक प्रतिनिधान हैं और सम्पूर्ण समाज से संबंधित होती है। यदि ये सम्पूर्ण सामाजिक समूह से संबंधित हैं तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि ये वैयक्तिक प्रतिनिधान के औसत को प्रस्तुत करती हैं। क्योंकि ऐसा होने से तो सामूहिक

प्रतिनिधान बौद्धिकता में वैयक्तिक प्रतिनिधान से निम्न हो जाएगें। वास्तव में सामूहिक प्रतिनिधान आम व्यक्तियों के ज्ञान से अधिक विस्तृत होते हैं।

सामूहिक प्रतिनिधान की तरह समाज में व्यापक प्रचलित विचार ही अवधारणाएं होती है। ये विशिष्ट वस्तुओं की अपेक्षा वर्गों और श्रेण्यिों को व्यक्त करते हैं। इसका कारण यह है कि वस्तुओं की अनोखी और परिवर्तनशील विशेषताओं में समाज की रूचि कम ही रहती है। सामूहिक प्रतिनिधान समाज द्वारा ही पैदा होते है और ये सामाजिक अनुभवों द्वारा फलते-फूलते हैं। उदाहरण के लिए आधुनिक राष्ट्र राज्यों के सन्दर्भ में सामूहिक प्रतिनिधान संविधान, राष्ट्रीय झंडा और राष्ट्रीय गान आदि में केन्द्रीकृत सामाजिक तथ्य हैं।

आइए अपनी चर्चा में आगे बढ़ने से पहले, बोध प्रश्न 2 पूरा कर लें।

बोध प्रश्न 2

i) समाजशास्त्र में प्रयुक्त कुछ अवधारणाएं यहां दी गई हैं, उदाहरण के लिए समाजीकरण, समुदाय, सामाजिक व्यवस्था आदि। पांच अन्य अवधारणाएं जो अपने समाजशास्त्र के पाठ्यक्रमों की पाठ्य सामग्री में पाई हों, उनकी सूची बनाइए।

....

....

....

....

....

ii) निम्नलिखित वाक्य में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

व्यक्ति .... का .... शरीर की मस्तिष्क कोशिकाओं की तरह है।

7.6 धर्म और सामूहिक प्रतिनिधान

दुर्खाइम ने धर्म को प्रकृति और समाज से मानव के संबंध का प्रतिबिम्ब माना है। धर्म को देवताओं में विश्वास तक सीमित नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसे भी धर्म हैं जिसमें देवताओं का प्रकट स्वरूप नही हैं। उदाहरण के लिए बौद्ध धर्म ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है। पुनः सभी धर्मों में ऐसे प्रमुख तत्व हैं जो जीवन की दिनचर्या से जुड़े हैं, जैसे खाना, पीना, भौतिक वातावरण की वस्तुएँ आदि जिसका देवी देवताओं से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता है।

धर्म का आधार समाज के यथार्थ में होता है। दुर्खाइम ने धर्म के सामाजिक आधार और समाज के धार्मिक आधार का वर्णन किया है। धर्म समाज की पवित्रता का स्वरूप है। धर्म मूल रूप में समाज के लिए व्यक्ति का सम्मान निरूपित करता है। यह गहन प्रतीकात्मक क्रिया द्वारा व्यक्त होता है। धर्म समाज का या विशेषकर सामूहिक प्रतिनिधान का प्रतिबिम्ब होता है। धर्म की प्रकृति की व्याख्या के लिए दुर्खाइम ने पवित्र के विचार का समुदाय के साथ-साथ विश्लेषण किया है। धार्मिक विचार की यह विशिष्ट विशेषता है कि विश्व का विभाजन दो क्षेत्रों में है, एक वह जो सभी पवित्र को स्वयं में समेटे हुए है और दूसरा वह जो सभी साधारण लौकिक वस्तुओं को दर्शाता

है। विश्वास, मिथक (पौराणिक कथा), धर्म सिद्धांत और दन्त कथाएं आदि प्रतिनिधान करती है। ये पवित्र और लौकिक वस्तुओं के मध्य सम्बन्धों का भी निरूपण करती हैं।

पवित्र की धारणा के अतिरिक्त दुर्खाइम ने धार्मिक प्रथाओं के पीछे धार्मिक विश्वासों की बाध्यकर विशेषता या दबाव डालने की क्षमता को देखा है। समाज अपने सदस्यों को व्यापक धार्मिक विश्वास से विचलित होने से रोकने के लिए दबाव का प्रयोग करता है। धर्म संगठित व्यवस्थाओं से बनता है। ये अनिवार्य विश्वासों से जुड़ी हुई प्रचलित प्रथाओं का सामूहिक रूप होती हैं। ये प्रथाएं विश्वासों में पाए जाने वाली वस्तुओं से संबंधित होती है। धर्म की प्रकृति बाध्यकरी है और जो बाध्यकर है उसकी उत्पत्ति समाज में निहित है। व्यक्ति की धर्म के प्रति मान्यता का अभिप्राय समाज की नैतिक शक्ति में श्रद्धा से है। इस प्रकार समाज व्यक्ति को आस्थाओं औन अनुष्ठानों का पालन करने के लिए बाध्य करता है। अतः अनुष्ठानों और आस्थाओं की रचना समाज ही करता है। धार्मिक क्रियाओं को निर्धारित करने वाले कारक समाज की प्रकृति में निहित होते है। समय के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तनों के परिणामस्वरूप, धार्मिक आस्थाओं और रीति-रिवाजों आदि के विभिन्न स्वरूपों में पविर्तन और विकास होता रहता हैं।

दुर्खाइम के अनुसार "सामाजिक अस्तित्व की स्थितियों के विश्लेषण से धर्म की वास्तवितक प्रकृति व्यक्त की जा सकती है। धार्मिक प्रतिनिधान को सामूहिक चेतना की प्रकृति के रूप में देखना चाहिए। ये सामाजिक जीवन में विचारों के निर्माण तथा सामूहिक प्रतिनिधान में गहरी रूचि विकसित करने में साहयक होते हैं।"

सामूहिक प्रतिनिधान साधारण से साधारण वस्तु को एक शक्तिशाली पवित्र स्वरूप प्रदान कर सकते है। इस प्रकार किसी वस्तु को दी गई शक्तियां केवल विचार पर आधारित होती है लेकिन फिर भी वे वास्तविक स्वरूप धारण कर लेती है। भौतिक ताकत की तरह, वे व्यक्तियों के आचरण का सुनिश्चित करती है। इस प्रकार सामाजिक विचार व्यक्तिगत विचार के ऊपर आदेशात्मक सत्ता प्राप्त कर लेता है। सामाजिक विचार परिस्थितियों के अनुसार वास्तविकता में वृद्धि में कमी कर सकता है। इस प्रकार एक विचार भी सामाजिक जीवन में एक यर्थाथ बन सकता है। इसलिए धार्मिक विचार या आस्थाएं भौतिक वस्तुओं से जुड़ी रहती हैं जो उनको प्रतिबिम्बित करती हैं।

धार्मिक शक्ति समूह द्वारा अपने सदस्यों में व्याप्त एक मुख्य भावना है। यह व्यक्तियों की चेतना के बाहर प्रक्षेपित है। ये धार्मिक भावनाएं किसी वस्तु से सम्बद्ध हो जाती है जो पवित्र बन जाती है। यह वस्तु किसी भी तरह की हो सकती है। पूजा की वस्तु के आन्तरिक गुणों से धार्मिक आस्था का कोई मतलब नहीं होता। समाज धार्मिक आस्थाओं को पूजा की वस्तुओं से जोड़ देता है। ये साधारणतः सामूहिक प्रतिनिधान के प्रतीक स्वरूप हैं।

आदिम समाजों में, एक कुल (clan) के सदस्य अनुभव करते है कि वे एक सामान्य प्रतीक जैसे पौधा, जानवर, या वस्तु से संबंधित है। एक समूह को "कौआ" कहा जाता है जबकि दूसरे को "बाज" या "नाग"। कुछ ऐसे भी समूह हैं, जिनका नाम किसी "जगह" से जुड़ा होता है। यह नाम उन्हें कई तरह से सहायता करता है। ऐसे प्रतीकों को कई समाजों 'टोटम' कहा जाता है। टोटम (totem) के प्रति उन समाजों में सदस्यों की मनोवृत्ति श्रद्धा होती है। वे उस पौधे या जानवर को हानि नहीं पहुँचाते। गंभीर आकस्मिक संकट के समय भी वे पहले इसकी पूजा करते है ओर उसे मारने या

नष्ट करने के पहले सामूहिक क्षमा याचना करते है। अपने टोटम के प्रतीक को सुरक्षित रखने के लिए अनुष्ठानों की एक व्यवस्था होती है। इस प्रकार एक कुल का टोटम बाह्य रूप से टोटम के सिद्धांत की एक अभिव्यक्ति है, अर्थात् परमशक्ति (a superior power)। यह एक निर्धारित समाज जैसे कुल (clan) का प्रतीक भी होता है। यही कुल की पताका है। इस चिन्ह से एक कुल अन्य कूलों से अपनी अलग अस्मिता बनाए रखता है। यह कुल के अस्तित्व का एक स्पष्ट प्रतीक होता है। इसलिए यह एक साथ समाज और अलौकिक शक्ति का प्रतीक होता है। कुल का देवता अर्थात् ऐसा टोटम सिद्धांत अपने आप में ही कुल होता है। अतः पौधे या जानवर जैसे प्रत्यक्ष टोटम के स्वरूप में कुल अपना अस्तित्व निरूपित कर लेता है। पवित्र वस्तु का सामूहिक प्रतिनिधान पूजा पद्धति है। धर्म का विचार सामूहिक प्रतिनिधान में शुरू होता है व इन्हीं द्वारा प्रचलित होता है। विश्वासों, विचारों, मूल्यों और धार्मिक विचारधाराओं के द्वारा ये प्रतिनिधान प्रतिबिम्बित होते है। ये आस्था रखने वालों के समुदाय में अनुष्ठान एवं पूजा पद्धति के माध्यम से व्यवहार में लाए जाते हैं।

दुर्खाइम ने मानव, समाज और प्रकृति के संबंध पर विचार किया है। उसके अनुसार प्रकृति का अध्ययन विज्ञान द्वारा अधिकाधिक होने लगा है। इस प्रकार विज्ञान के विस्तार ने धर्म के क्षेत्र को कम कर दिया है। ज्ञान के सभी स्वरूपों अर्थात् पवित्र एवं लौकिक को पहले धर्म निरूपित करता था। विज्ञान के विकास स`अब लौकिक का क्षेत्र बढ़ गया है। पहले धार्मिक कर्त्तव्य को नैतिकता समझा जाता था। दुर्खाइम ने उस कर्त्तव्य के धार्मिक भाव को अस्वीकार किया और लौकिक नैतिकता में अपना विश्वास व्यक्त किया। उसके अनुसार आधुनिक समय में समाज में नैतिक व्यवस्था के लिए लौकिक नैतिकता आधार प्रस्तुत करेगी। इस प्रकार लौकिक नैतिकता समूह चेतना का एक नया स्वरूप बन सकती है।

बोध प्रश्न 3

i) लौकिक नैतिकता का क्या अर्थ है?

....

....

....

....

....

ii) धर्म समाज की आत्मा है, इस कथन की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

7.7 सारांश

दुर्खाइम ने समाज और व्यक्ति के मध्य संबंध का अध्ययन किया है। उसका विश्लेषण समाज पर आधारित है किसी व्यक्ति विशेष या उसकी इच्छा पर नहीं। भाषा और विचार की श्रेणियों तभी अर्थपूर्ण हैं जब एक से अधिक व्यक्ति उनका उपयोग करते हैं। इस प्रकार, विचार अपने व्यवहार और उत्पत्ति में सामूहिक हैं। धर्म भी व्यवहार और विचार की एक सामूहिक पद्धति है। सरल समाज के धर्म में विचारों और व्यवहार की सामूहिक पद्धति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, उदाहरण ऑस्ट्रेलिया की जन-जातियाँ इसी प्रकार सामूहिक पद्धति का पालन करके धर्म निर्वाह करती हैं। सामान्य पूजा पद्धतियां कुल में संगठित लोगों की सामूहिक अस्मिता को निरूपित करती हैं। टोटम इस अस्मिता को प्रतिबिम्बित करता है और धर्म ऐसे समाज की आत्मा बन जाता है। प्रकृति की जानकारी जैसे-जैसे बढ़ती है, विज्ञान लोगों की लौकिक दृष्टि बढ़ाता है तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए लौकिक नैतिकता को अधिक महत्व दिया जाने लगता हैं। बढ़ती है, विज्ञान लोगों की लौकिक दृष्टि बढ़ाता है तथा सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए लौकिक नैतिकता को अधिक महत्व दिया जाने लगता है।

7.8 संदर्भ

चौहान, ब्रजराज 1994, *समाज विज्ञान के प्रेरक स्रोतः वेबर, मार्क्स, दुर्खाइम* ए.सी.ब्रदर्सः उदयपुर

ल्यूक्स, एस. 1973. *एमिल दुर्खाइम हिज लाइफ एंड वर्कः हिस्टॉरिकल एंड क्रिटीकल स्टडी.* एलेन लेन एंड द पेंगुइन प्रेसः लंदन

निस्बत, आर.ए., 1974. *द सोशियोलॉजी ऑफ़ एमिल दुर्खाइम* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसः न्यूयार्क

रेमों, आरों 1979. (रीप्रिन्ट), *मेन करॅन्ट्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट-II* पेंगुइनः हरमंड्स वर्ष (देखिए एमिल दर्खाइम), पृष्ठ 21-108

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय पाठ्यसामग्री, *सामजशास्त्रीय सिद्धांत* (ESO 13), इग्नू : नई दिल्ली

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) समाज का अपना एक अस्तित्व होता है जो समाज में व्यक्तियों के सामूहिक अस्तित्व से अलग होता है। समाज वैयक्तिक चेतना की सीमाएं निश्चित करता है तथा लोगों को आचरण अथवा व्यवहार के सामाजिक नियमों का पालन करने के लिए बाध्य करता है। इस तरह समाज के सामूहिक अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सामूहिक हितों को व्यक्तिगत हितों से अधिक महत्व दिया जाता है।

ii) किसी समाज के सदस्यों के बीच सामान्य विश्वासों, मान्यताओं एवं भावनाओं की एक व्यवस्था की रचना को सामूहिक चेतना कहा जाता है। इसका अस्तित्व सर्वव्यापी है।

बोध प्रश्न 2

i) (अ) प्रकार्य (ब) संरचना (स) स्तरीकरण (द) सामाजिक परिवर्तन और (इ) संघर्ष

ii) प्रतिनिधान, आधार

बोध प्रश्न 3

i) व्यक्ति का व्यवहार नैतिक शक्ति से नियंत्रित होता है। यह शक्ति को सामाजिक आदेशों या प्रतिमानों का पालन करवाती है। पूर्ववर्ती सरल समाजों में, यह शक्ति धर्म के द्वारा अनुमोदित होती थी।

आधुनिक समाजों में धार्मिक शक्ति का महत्व कम हो गया है। फिर भी समाज ही व्यक्ति के व्यवहार को नियमित करता है। समाज में नैतिकता का अस्तित्व तो है, लेकिन अब यह धर्म से पृथक हो गई है। इसे ही लौकिक नैतिकता कहा जाता हैं।

ii) समाज की सामाजिक भावनाएं है। कुछ विशिष्ट वस्तुएं और स्थान पवित्र समझे जाते है, श्रद्धायुक्त होते हैं, और कभी-कभी ये देवताओं और देवमूर्तियों की आराधना से जुड़े होते है। कुछ ऐसी भी वस्तुएं है, जो अशुद्ध समझी जाती है, जैसे मृत पशु, गन्दे कपड़े और शमशान घाट (दफनाने की जगह) आदि। ऐसी वस्तुओं और स्थानों से संपर्क प्रदुषित समझा जाता है। शुद्ध ओर अशुद्ध वांछनीय और अवांछनीय की परिभाषा सामूहिक है। इस प्रकार, समाज ही स्वर्ग या नर्क और यहां तक कि देवता और शैतान के विचारों को उत्पन्न करता है। ये विचार और व्यवहार, जैसे पूजा-पद्धति या शुद्धीकरण, लोगों को एक समूह भावना से जोड़ते हैं। इसलिए, समूह अपने विश्वासों और पूजा पद्धतियों के लिए श्रेय है और इस प्रकार समाज की आत्मा को धर्म व्यक्त करता है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY